International Journal of Hindi Research
www.hindijournal.com
ISSN: 2455-2232
Received: 28-11-2021, Accepted: 13-12-2021, Published: 30-12-2021
Volume 7, Issue 6, 2021, Page No. 116-117

निर्गुण संतों की विचारधारा

ज्योत्स्ना आनंद
एसोसिएट प्रोफेसर, हिंदी विभाग, रामजस कॉलेज, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली, भारत

सारांश
प्रस्तुत शोध–आलेख का ध्येय हिंदी साहित्येतिहासिक मध्कालीन भक्तिधारा में निर्गुण संत समाज के सामाजिक प्रदेय को लिपिबद्ध करना है। संत मत के उद्‌गम स्रोत से अद्यतन प्रवाहित अजस्र परम्परा का निदर्शन ही शोध–आलेख का प्रमुख उद्देश्य रहा है। शोध–आलेख को साधन रूप में प्रयोग कर सनातन निर्गुण संत परंपरा का व्याख्यान प्रस्तुत करना ही वास्तविक साध्य रहा है।

मूल शब्दः संत, निर्गुण, मध्यकाल, साहित्येतिहास, एकेश्वरवाद, वैष्णव संस्कृति

प्रस्तावना

निर्गुण संतों ने संतमत को जन्म दिया। जिस समय संतमत का प्रारंभ हुआ उस समय दो भिन्न–भिन्न धार्मिक विचारधाराएँ देश के धार्मिक जीवन में प्रवाहित हो रही थीं। ये दोनों ही विचारधाराएँ प्रधान थीं। समाज में हिंदू और मुसलमानों के पृथक–पृथक् वर्ग थे। ये दोनों ही राजनीतिक, सामाजिक और धार्मिक दृष्टि से एक–दूसरे से बिल्कुल भिन्न थे। इस्लाम में एकेश्वरवाद पर बल दिया जा रहा था और उसी के प्रचार का प्रयास भी किया जा रहा था। दूसरी ओर हिंदू वैष्णव धर्म में आस्था रख रहे थे और वैष्णव धर्म का प्रचार करने की कोशिश में लगे हुए थे। वैष्णव संस्कृति के दर्शन को धार्मिक अभिव्यक्ति देने की कोशिश की जा रही थी। योग की साधना भी उस समय तक तांत्रिक रूप धारण कर चुकी थी एवं उसका विकृत रूप प्रधान हो गया था। व्यक्तिगत साधना होने के कारण सामाजिक जीवन का कोई उद्धार भी इससे नहीं हो रहा था। अतः सामाजिक जीवन के हित की दृष्टि से भी योग की साधना नगण्य बन चुकी थी। शंकराचार्य का अद्वैत दर्शन सामान्य व्यक्ति अथवा गृहस्थ के लिए उपयोगी सिद्ध नहीं हुआ। क्योंकि अद्वैत दर्शन के अनुसार ब्रह्म के निराकार स्वरूप को भक्ति का विषय बनाना संभव नहीं था। यही कारण है कि अद्वैत दर्शन सामान्य जनता के लिए ग्राह्य नहीं बन सका। 'हिंदी साहित्य का इतिहास' में आचार्य रामचंद्र शुक्ल अंकित करते हैं –

"हठयोगियों के साधनात्मक रहस्यवाद के कुछ सांकेतिक शब्दों (जैसे चंद, सूर, नाद, बिंदु, अमृत, औंधा कुआँ) को लेकर अद्‌भुत रूपक बाँधे हैं जो सामान्य जनता की बुद्धि पर पूरा आतंक जमाते हैं।" नाथपंथी भी पारिवारिक जीवन का विरोध कर रहे थे। वे भी पारिवारिक जीवन व्यतीत करने के पक्ष में नहीं थे।

इन परिस्थितियों में एक ऐसी साधना–पद्धति की आवश्यकता थी जो समाज में व्याप्त दो भिन्न धार्मिक विचारधाराओं के भेदभाव को मिटा सके। अर्थात् हिंदुओं के अद्वैत दर्शन और मुसलमानों के एकेश्वरवाद की गलत धारणाओं पर आधारित भेदभाव को दूर कर सके। उत्तरी भारत में रामानंद से भक्ति की दीक्षा लेकर कबीरदास निर्गुण भक्ति का व्यापक प्रचार प्रसार कर रहे थे। कबीर ने हिंदू और मुसलमान के पारस्परिक भेद को मिटाने का बहुत प्रयास किया। उनकी दृष्टि में राम और रहीम में कोई अंतर नहीं था। उनके भरसक प्रयासों से अल्लाह मात्र मुसलमानों का ही अल्लाह न रह गया और राम भी केवल हिंदुओं का राम नहीं रह गया।

कबीर ने समस्त मानवों को एक ही पिता की संतान माना और हिंदुओं एवं मुसलमानों से एक ही ईश्वरीय ज्योति के सिद्धांत का प्रचार किया। नानक ने भी माना कि हिंदू और मुसलमान अलग नहीं हैं। सब एक ही प्रभु की संतान हैं। अतः हिंदू–मुसलमान में भेद मानना व्यर्थ है। न तो कोई हिंदू है और न ही कोई मुसलमान। सही अर्थों में "इस देश की प्रतिमा सर्वदा जीवन के मूल उत्स से प्रेरणा लेती रही है और इसी कारण सभी प्रकार के झंझा और वात्याचक्र के आघातों के फलस्वरूप कहीं भी स्खलित नहीं हुईय बल्कि उनको ठेलती हुई बराबर अग्रसर होती गई।" नाम और रूप का जो भेद हमें दिखाई पड़ता है, वह मिथ्या है। कबीर से लेकर गुरुनानक तक सभी संतों के प्रयास से हिंदुओं का अद्वैतवाद, मुसलमानों का एकेश्वरवाद बन गया और मुसलमानों का एकेश्वरवाद तथा अद्वैतवाद से कोई अंतर नहीं रह गया। यहाँ तक कि कबीर ने अल्लाह और राम में भेद मानने वालों को बहुदेववादी कहा और उन्हें उस गणिका का पुत्र बताया, जो यह नहीं जानता कि उसका वास्तविक पिता कौन है। बहुदेववाद का विरोध नानक ने भी किया और प्रभु के निर्गुण स्वरूप की भक्ति का उपदेश दिया।

कबीर ने माना कि परमात्मा अद्वैत है। वह अपनी इच्छानुसार विविध रूप एवं नाम धारण करता है। कभी वह अपना नाम अल्लाह रखता है और कभी राम। रहीम, केशव, हरि, हजरत – सभी अद्वैतसत्ता के अलग–अलग नाम हैं। नानक ने जो यह कहा है – 'न को हिन्दू, न को मुसलमान', ठीक वही भाव कबीर उनसे पहले व्यक्त कर चुके थे। उन्होंने हिंदुओं और मुसलमानों को एक साथ संबोधित करते हुए कहा है कि हिंदू और तुरक का भेद मिथ्या है। तुम दोनों एक ही राम का जाप किया करो। हिंदुओं और तुर्कों का रचयिता अलग नहीं है। कबीर ने तो हिंदुओं को संबोधित करते हुए यहाँ तक कहा है कि वे उस राम की भक्ति क्यों नहीं करते जिसके महेश भी भक्त हैं।

निर्गुण संतों ने ज्ञानमार्ग का विरोध तो नहीं किया किंतु जहाँ भी ज्ञान और भक्ति की चर्चा का अवसर आया वहाँ भक्ति को ही महत्त्व दिया। कबीर मन, कर्म और वचन द्वारा प्रभु के गुणगान और नाम स्मरण को ही जीवन का लक्ष्य मानते थे। नानक भी प्रभु की भक्ति को प्राप्त करने के लिए गुरु के चरणों में नतमस्त होकर हरिजन के दासों का दास कहलाने में गौरव का अनुभव करते थे। उन्हें सांसारिक सुखों की आकांक्षा नहीं थी। भले ही संतों ने अपने प्रभु का स्वरूप निर्गुण माना है परंतु उपासना के क्षेत्र में उसे अलौकिक गुणों का भण्डार स्वीकार किया है।

निर्गुण मार्गी संत वैधी भक्ति को नहीं मानते थे। उनका मानना था कि वैधी भक्ति भक्त समाज को अंधविश्वासी बना देती है। बाहरी उपकरणों के अनुष्ठानों से ही वह आत्मकल्याण की अपेक्षा करने लगता है। अंतःकरण की शुद्धि का महत्त्व उसके लिए गौण हो जाता है। यही कारण है कि निर्गुणमार्गी संतों ने वैधी भक्ति के स्थान पर 'भावभक्ति' का प्रचार किया। कबीर ने तो भावप्रधान भक्ति को भवरोग–निवारिणी संजीवनी माना है। उन्होंने 'भावभक्ति' में जप, तप, संयम आदि को व्यर्थ माना है। दादू ने तो भक्तिहीन जीवन को जीवन ही नहीं माना है।

निर्गुण संतों का मानना है कि प्रेम में इतना बल है कि उसके सहारे जीव रूप नारी प्रभु रूपी मूर्त स्वरूप को अपनी ओर आकर्षित कर सकती है। संतों का प्रेम अज्ञान के अंधकार को नष्ट करने में पूरी तरह से समर्थ है। उनके प्रेम में आत्मा को निर्मल बनाकर उसे ईश्वरोन्मुखी बनाने की शक्ति है। नानक का प्रेम एकनिष्ठ भगवत् प्रेम है। नानक ने प्रभु भक्ति को जीव की रक्षा का सबसे अच्छा उपाय माना है। नानक ने वैधी भक्ति को स्वीकार नहीं किया। वे प्रेमाभक्ति के बिना कर्म को कोरा पाखण्ड मानते हैं। नानक ने अहंकार 'हउमे' को प्रभु की भक्ति में बहुत बड़ी बाधा माना है।

निर्गुण संतों ने भागवत संप्रदाय में प्रचलित वैधी भक्ति का सिद्धांत स्वीकार नहीं किया। प्रतिमा पूजन में स्नान, ध्यान, धूप आदि उपकरणों द्वारा प्रभु प्रतिमा का पूजन होता है संत कवि कबीर ने भी यह सब कुछ किया है, परंतु उनका ढंग निराला है। प्रेम ही उनकी पूजा की सामग्री के पत्र एवं पुष्प हैं। चित्त चंदन है, स्नेह पुष्पमाला है, हृदय उनका आसन या मुद्रा है। सहज भाव के सिंहासन पर वह बैठते हैं। शील का स्नान करते हैं और ध्यान का धूप काम में लाते हैं। अज्ञान के अंधकार को दूर करने के लिए ज्ञान का दीपक जलाते हैं। मन की माला लेकर उन्होंने 'सोअहम्' का जाप किया है। आत्मा ही उनका देवता है। शरीर ही मंदिर या देवालय है। कबीर की भक्ति भावरूपा है, इसलिए इनकी पूजा भी भावात्मक है।

निर्गुण संतों ने अपने आपको दास और भगवान को स्वामी मानकर अनन्य भाव से उसके आगे अपना सर्वस्व अर्पित किया है। कबीर, गोविन्द की सेवा द्वारा मिलने वाले सुख की तुलना में राजसुख को भी हेय मानते हैं। दादूदयाल को सेवक कहलाने में परम आनंद तथा असीम गौरव का अनुभव होता है। नानक ने भगवान को मित्र, प्रियतम, साथी, हित–चिंतक के रूप में वर्णित किया है। उन्होंने अपने विनय पदों में प्रभु के बिना एक क्षण के लिए भी जीना असंभव माना है। उनका मानना है कि प्रभु के समान कोई दूसरा मित्र नहीं है। प्रो० (डॉ०) सूर्यप्रसाद दीक्षित "हिंदी साहित्येतिहास की भूमिका रू मध्यकाल" में लिखते हैं – "संतों ने अपने को बहुरिया और हरि को 'पीऊ' माना है, साथ ही निहकर्मी पतिव्रता का धर्म निभाने का संदेश दिया है। ..... संत काव्य में प्रबल बिरहानुभूति का स्वर है। यह प्रेम प्राणि–मात्र के लिए प्रकट हुआ है।"

निर्गुण संतों में विरहासक्ति की प्रधानता भी दिखाई पड़ती है। कबीर की भक्तात्मा प्रियतम राम के लिए विरह की गहरी वेदना का अनुभव करती है। नानक की विरहिणी आत्मा की भी प्रियतम प्रभु के वियोग में दयनीय दशा है। उपास्य के नाम का स्मरण निर्गुण संतों की भक्ति की महत्त्वपूर्ण विशेषता है। उन्होंने साधु संगति की शरण की अनिवार्य आवश्यकता पर भी बल दिया है। गुरु के चरणों में बैठकर उसके बतलाए हुए 'शब्द' को हृदय में धारण करने के बाद ही उन्होंने हरिकीर्तन की महत्ता को स्वीकार किया है।

मानसिक विकारों, ईश्वर में अविश्वास, पाखण्ड और कुसंगति को निर्गुण संतों ने भक्ति के मार्ग की बाधा माना है। मानसिक विकारों को माया का प्रतीक बताया है। उनके अनुसार ईश्वर के अस्तित्व में विश्वास ही भक्त का सर्वप्रधान सहारा है। कबीर का अपने 'राम' के अस्तित्व में दृढ़ विश्वास है। नानक भी बार–बार दृढ़ विश्वास के साथ 'एक निरंकार' की सत्ता की घोषणा करते हैं। संत साहित्य मनीषी उदय प्रताप सिंह अपनी कृति "संतों के संवाद" में लिखते हैं –

"यही कारण है कि हजारों वर्षों से आध्यात्मिक चेतना को संत अपनी इच्छा, अपने राग में ढालता हुआ भारत की सांस्कृतिक चेतना को जगाता रहा है।"

निष्कर्ष

अस्तुय निर्गुण संतों की विचारधारा को हम सामंती व्यवस्था जनित परिस्थितियों के विरुद्ध प्रतिक्रिया भी मान सकते हैं क्योंकि धर्म और समाज का जैसा स्वरूप निर्गुण संतों को प्राप्त हुआ, वह मध्यकालीन सामाजिक एवं आर्थिक ढाँचे का स्वाभाविक परिणाम था।

संदर्भ सूची

1. हिंदी साहित्य का इतिहास, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, प्रथम संस्करण 2002, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ–50
2. निर्गुण साहित्यः सांस्कृतिक पृष्ठभूमि, डॉ० मोतीसिंह, प्रथम संस्करण, 1962, हिंदी प्रचारिणी सभा, वाराणसी, पृष्ठ–3
3. हिंदी साहित्येतिहास की भूमिकाः मध्यकाल (भाग–2), प्रो० (डॉ०) सूर्यप्रसाद दीक्षित, उत्तर प्रदेश हिंदी संस्थान, प्रथम संस्करण 2008, पृष्ठ–53
4. संतों के संवाद– उदय प्रताप सिंह, प्रथम संस्करण 2019, राष्ट्रीय पुस्तक न्यास, नई दिल्ली (भूमिका–भाग)